हिंदी आलोचना में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का योगदान

डॉ शिवदयाल पटेल, सहायक प्राध्यापक हिंदी
शासकीय महाविद्यालय बरपाली, जिला- कोरबा, छत्तीसगढ़
ईमेल आईडी patelshivdayal1@gmail.com

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : एक संक्षिप्त जीवन परिचय

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्याकाश के दैदीप्यमान नक्षत्र थे। उनके व्यक्तित्व की विराटता को शब्दों में बाँध पाना संभव नहीं है । वे बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी थे । वे मानवतावादी विचारधारा के सर्वश्रेष्ट वाहक, साहित्येतिहास के शोधकर्ता एवं व्याख्याता, भारतीय संस्कृति के संदेशवाहक, अप्रतिम कथाशिल्पी, भाषा लालित्य के प्रतिष्ठापक, अद्वितीय ललित-निबंधकार एवं उदारमना साहित्यकार थे। आचार्य हजारी प्रसाद सिवेदी का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जिला के ग्राम ओझवलिया के छोटे से टोले "आरत दूबे का छपरा" में 20 अगस्त, 1907 ई0 में हुआ था । यह छोटा सा टोला आचार्य जी के प्रपितामह श्री आरत दूबे ने बसाया था । उन्हीं के नाम से इस टोले का नाम चला । आचार्य द्विवेदी के पिता का नाम पं0 अनमोल द्विवेदी और माता का नाम श्रीमती परमज्योति देवी था । आचार्य जी का आंशिक जीवन अनेकानेक कठिनाइयों से भरा रहा । घर में आर्थिक विपन्नता थी जिसके कारण उनका अध्ययन भी प्रभावित हुआ । उनका अध्ययन नियमित रूप से नहीं चल पाया । स्वयं के प्रयासों से किसी प्रकार उन्होंने अंग्रेजी की प्रवेश परीक्षा (हाईस्कूल) सन् 1927 में काशी विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की । इनके पिता ने ग्राम के किसी व्यक्ति से 40 रुपये उधार लेकर इंटरमीडिएट में प्रवेश दिला दिया। बनारसी दास चतुर्वेदी को लिखे एक पत्र में इसका वर्णन करते हुए आचार्य द्विवेदी कहते हैं - "मुझे याद आता है कि पिताजी ने बड़ी कठिनाई के बाद गाँव के एक व्यक्ति से 40 रूपये उधार लिये थे । यह मेरी इंटरमीडिएट की भर्ती कराई की प्रथम कहानी।

घर की अवस्था बड़ी दयनीय थी । आज भी याद करता हूं तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं । साल के अंत में मेरा नाम कट गया ..... परीक्षा में फीस बहुत कम लगती थी, पर उतना दे सकने लायक पैसा भी मेरे पास नहीं थे । मेरे पास ओढ़ने के लिए कपड़े भी नहीं थे । मुझे किसी से माँगने की कला नहीं आती थी । सो मैंने बगल में पोथी दबाई और कथा बाँचने चला गया । मेरे एक मित्र थे, श्री सीताराम द्विवेदी.....उन्होने कोआथ (आरा) में मेरी कथा बैठा दी ..... आठवें दिन चढ़ावा चढ़ा । 35 रूपये, एक रजाई, कुछ साड़ियाँ, कुछ कपड़े, कुछ धोतियाँ और प्रचुर अन्न मुझे मिला ..... मेरे जीवन में इससे बड़ी सहायता न कभी मिली और न मिलेगी । आप आसानी से समझ सकते हैं कि साड़ियों और धोतियों का मेरे घर में कैसा स्वागत हुआ होगा । 35 रूपए तो मेरे लिए बहुत बड़ी सिद्धि थी । सो मैं इंटरमीडिएट की नदी पार कर गया ।" 1 इन आर्थिक विषमताओं में भी द्विवेदी जी ने अपना धीरज नहीं खोया और निरंतर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते रहे । आर्थिक विपन्नताओं की कसौटी पर उन्होंने अपने जीवन रूपी स्वर्ण को कस कर परखने का प्रयास किया और अपनी कृतियों के द्वारा समाज को प्रेरित करने एवं साहस प्रदान करने का प्रशंसनीय कार्य किया । सन् 1930 में साहित्याचार्य होने के उपरांत उन्हे हिंदी अध्यापन के लिए शांतिनिकेतन से निमंत्रण मिला । द्विवेदी जी के जीवन का यह महत्वपूर्ण मोड़ था । 6 नवंबर, 1930 को काशी से अपनी यात्रा प्रारम्भ कर 7 नवंबर, 1930 को वे शांतिनिकेतन पहुंचे । वे इन तिथियों को अपने जीवन के निर्माण का आरंभ बिंदु मानते थे । इन्हे वे "द्विजत्व" की तिथियाँ मानते थे । इसी कारण सदैव इन तिथियों को धूम-धाम से मनाया करते थे। शांतिनिकेतन में आपका परिचय हिंदी, बंगला एवं अंग्रेजी के यशस्वी एवं प्रतिष्ठित विद्वानों से हुआ । कविगुरू रवींद्र नाथ ठाकुर, महामहोपाध्याय पं विधुशेखर भट्टाचार्य, क्षितिमोहन सेन, नंद दुलारे बसु, दीनबंधु सी एफ एंड्रूज, पं बनारसी दास प्रभृति अनेक महान व्यक्तियों एवं मनीषियों के निकट संपर्क ने आचार्य द्विवेदी को अत्यंत प्रभावित किया । हिंदी, बंगला एवं अंग्रेजी के साहित्य के अध्ययन एवं मनन का भाग्य भी शांतिनिकेतन में प्राप्त किया । यहीं आचार्य द्विवेदी को अत्यंत प्रभावित किया। यहीं आचार्य द्विवेदी के साहित्य-सृजन की धारा प्रस्फुटित हुई जो सन् 1979 तक अबाध गति से प्रवाहित होती रही । इस अवधि में

द्विवेदी जी ने लगभग 26 (छब्बीस) कृतियों का सृजन किया । सन् 1950 से 1960 तक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष पद को सुशोभित किया । सन् 1960 के जुलाई मास में आचार्य द्विवेदी पंजाब युनीवर्सिटी, चंडीगढ़ के हिंदी विभाग में 'टैगोर प्रोफेसर आफ हिंदी'के पद पर नियुक्त हुए । इस प्रकार विविध स्थानों पर हिंदी संबंधी पदों को सुशोभित करते हुए, हिंदी की अनथक सेवा करते हुए, अंततः इस अनन्य हिंदी सेवी ने 19 मई, 1979 को निर्वाण प्राप्त किया । " इस युग का अलबेला आलोचक, अंकुठित चिंतक, अनाविल कथाकार , सहज साधक, मर्मी कवि और सांस्कृतिक सौंदर्य का अप्रतिम चितेरा धुलिलुंठित पलाश पुष्प के समान और आतपम्लान बंधुजीव कुसुम की भाँति देखते-देखते महाभूत में विलीन हो गया ।" परंतु “मनुष्य केवल अपनी काया में ही नहीं जीता, वह अपनी कृति में जीता है, कीर्ति में जीता है। और अपनी कालजयी कृतियों के माध्यम से आचार्य द्विवेदी चिरकाल तक हमारे बीच रहेंगे ।

आचार्य द्विवेदी की रचनाएँ

आचार्य द्विवेदी के व्यक्तित्व की ही भाँति उनका लेखन भी बहुआयामी हैं । जिस प्रकार उनका व्यक्तित्व शब्दों की सीमा से परे है उसी प्रकार उनके लेखन की सीमा निर्धारित करना भी असंभव नहीं तो दुष्कर अवश्य है । “आचार्य जी के पांडित्य के समान ही उनके लेखन का “पाट" बहुत विस्तृत है ।" आचार्य जी की कालजयी कृतियों ने हिंदी साहित्य के अनेक क्षेत्रों के भंडार में वृद्धि की है । उन्होंने प्रमुखतः जिन विधाओं को अपनी लेखनी के स्पर्श से मुखरित किया है वे हैं -समीक्षा, उपन्यास एवं निबंध ।

समीक्षा-साहित्य

1.*सूर-साहित्य*

सूरदास एवं उनके साहित्य पर नवीन समीक्षा -दृष्टि सम्पन्न यह ग्रंथ सन् 1936 में प्रकाशित हुआ । इसमें आचार्य द्विवेदी ने भक्ति काल के विकास पर नवीन दृष्टि से विचार किया है ।

2.*हिंदी साहित्य की भूमिका*

"विश्व-भारती" में अहिंदी भाषी साहित्यिकों को हिंदी-साहित्य का परिचय कराने के उद्देश्य से इस ग्रंथ का आरंभ हुआ था । सन् 1940 में इसका प्रकाशन हुआ । साहित्य के इतिहास को जन-चेतना के रूप में व्याख्यायित करने के लिए ही द्विवेदी जी ने

संस्कृत साहित्य, महाभारत, पुराण, रामायण, बौद्ध एवं जैन साहित्य जैसे विषयों की विवेचना करते हुए हिंदी साहित्य के इतिहास को अन्य साहित्यों के साथ संबंध करते हुए अध्ययन सुलभ बनाया है।

3.*कबीर*

आचार्य द्विवेदी की प्रसिद्ध कृति "कबीर' की रचना 1942 ई0 में हुई । इसमे द्विवेदी जी ने "कबीरदास'' के व्यक्तित्व, साहित्य और दार्शनिक विचारों की समीक्षा की है ।

4. *नाथ संप्रदाय*

सन् 1950 में यह रचना सर्वप्रथम प्रकाशित हुई । द्विवेदी जी ने विभिन्न सम्प्रदायों के गुरूओं के पास सुरक्षित सामग्री एवं विभिन्न ग्रंथो के गहन अध्ययन के आधार पर "नाथ संप्रदाय" नामक ग्रंथ की रचना करके सर्वप्रथम नाथ संप्रदाय से संबंधित

प्रामाणिक एवं ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध कराने का अभूतपूर्व प्रयास किया है।

5. *हिंदी साहित्य का आदिकाल*

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के तत्त्वावधान में आचार्य द्विवेदी द्वारा दिए गए पाँच व्याख्यानों का पुस्तक रूप में प्रकाशन सन् 1952 में हुआ । इस रचना के माध्यम द्विवेदी जी ने हिंदी साहित्य के आदिकाल पर अध्ययन पूर्ण सामग्री प्रस्तुत की ।

6. *हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास*

इस ग्रन्थ का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1952 में हुआ । इसमें हिंदी साहित्य के उद्‌भव और विकास का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है ।

7. *मध्यकालीन धर्म-साधन*

सन् 1940 में द्‌विवेदी जी ने यह ग्रंथ हिंदी साहित्य को प्रदान किया । इस ग्रंथ में मध्यकालीन साधना विषयक 39 निबंधों का संग्रह है ।

8. *सहज-साधना*

इसका प्रकाशन सन् 1963 में हुआ था । "सहज-साधना' में सिद्‌धों, योगियों तथा संतों आदि के साहित्य में लक्षित होने वाली सहज-साधना की जानकारी प्रस्तुत की गई है।

9. *कालिदास की लालित्य-योजना*

आचार्य हजारी प्रसाद द्‌विवेदी की यह अति-प्रसिद्‌ध समीक्षा कृति

कालिदास पर दिए गए दो व्याख्यानों का संकलित रूप है । इन व्याख्यानों का पुस्तक रूप में सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1965 में हुआ ।

10. *आधुनिक हिंदी साहित्य पर विचार*

इस पुस्तक में संग्रहित आठ निबंधो में हिंदी साहित्य के निर्माण, उसके विकास तथा उसकी प्रवृत्तियों को सर्वग्राह्‌य बनाने के लिए अत्यंत गहन तथा मननशील सामग्री प्रस्तुत की गई है ।

11. *सिक्ख गुरूओं का पुण्य स्मरण*

सन् 1979 में प्रकाशित यह द्‌विवेदी जी की अंतिम शोध कृति है । इसमें गुरू नानक देव एवं अन्य सिक्ख गुरुओ के व्यक्तित्व, कृतित्व, संदेश एवं महिमा का उल्लेख मिलता है। द्‌विवेदी ग्रंथावली के भाग-9 एवं 10 में संग्रहित हैं । भाग-9 में 88 एवं भाग-10 में 61 निबंध हैं । निबंध, विशेषकर ललित निबंध के क्षेत्र में आचार्य द्‌विवेदी ने अतुलनीय योगदान दिया ।

उनके निबंधो में उनके अनूठे व्यक्तित्व की छाप है, साथ ही उनमें उनका गहन--गंभीर चिंतन भी अत्यंत सहज ढंग से अनुस्यूत है । उनके मस्तमौला, फक्कड़ और निराले व्यक्तित्व ने हिंदी निबंध के क्षेत्र में लालित्यशैली को न सिर्फ प्रतिष्ठित ही किया वरन् उसे

उत्कर्ष तक भी पहुंचाया । निःसंदेह, आचार्य द्विवेदी ने साहित्य की ललित निबंध विधा मे महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है ।

हिंदी आलोचना में योगदान

आचार्य द्विवेदी जी का आलोचक रूप भी अपने परिचय की मांग नहीं करता। द्विवेदी जी की समीक्षा दृष्टि का धरातल व्यापक है। किसी रचना के मूल्यांकन का उनका अपना मानदंड था। काव्य केवल कौशल नहीं है वह मनुष्य को सामान्य पशु-धरातल से ऊपर उठाकर उच्चासन पर बैठाने का साधन भी है। काव्यशास्त्र के वे पंडित थे लेकिन 'साहित्य का साथी' नामक पुस्तक की सहायता से उन्होंने ज्ञान के सरलीकरण की जो पद्धति खोजी थी, वह इस बात का प्रमाण है कि शास्त्र को शास्त्र का पंडित ही सरल बना सकता है। उन्होंने न केवल संस्कृत के काव्य शास्त्रीय पदबंधों को अस्वीकार किया अपितु अंग्रेजी से अनुदित और हिन्दी में स्वयं अर्जित-उपार्जित, गठित,

शास्त्रीय शब्दावली का भी बहिष्कार किया है। द्विवेदी जी को एक ऐतिहासिक सांस्कृतिक चेतना-सम्पन्न या मानवतावादी समाजशास्त्रीय दृष्टि-सम्पन्न समीक्षक का गौरव भी प्राप्त है। द्विवेदी जी मूलतः साहित्येतिहासकार और अनुसंधायक हैं। "द्विवेदी जी प्रधानतः सांस्कृतिक समीक्षक हैं पर भाव संवेदनात्मक के सूक्ष्मतम तथा मर्मस्पर्शी रूप की अनुभूति के साक्षात्कार तथा कलात्मक मूल्यांकन की क्षमता उनमें किसी

से कम नहीं। सूर तथा अन्य कवियों की समीक्षा इस बात का प्रमाण है। द्विवेदी जी शास्त्रीय नियमों के कठोर नियन्त्रण के नहीं अपितु कवि प्रतिमा की स्वछंदता के समर्थक हैं। पर द्विवेदी जी ने इसी धारा के कतिपय तत्व अन्यों की अपेक्षा इतने प्रबल हो गए कि वे पृथक पद्धति का ही रूप धारण कर गये। इसी प्रकार द्विवेदी जी को सौष्ठववादी कहने की अपेक्षा

मानवतावादी एवं समाजशास्त्रीय समीक्षक कहना अधिक समीचीन है। मानवतावादी समाजशास्त्री समीक्षा का सबसे प्रौढ़ एवं पुष्टरूप

द्विवेदी जी की समीक्षा में ही देखने को मिलता है। द्विवेदी जी की

मान्यता है कि साहित्य जीवनधारा का एक बहुत महत्वपूर्ण अंग है। धारा के विभिन्न भाग ही युग हैं। जीवन की यह धारा चिर गतिशील और चेतन है। साहित्य को उस युग के जीवन की सम्पूर्ण सांस्कृतिक गति-विधि के संदर्भ में रखकर उसको गतिशील चेतन परिवृति के सहज परिणाम एवं जीवन को गति प्रदान करने की प्रमुख शक्ति मानकर ही उसका मूल्यांकन सम्भव है। यह द्विवेदी जी के उदार एवं असांप्रदायिक प्रगतिशील दृष्टिकोण का ही परिणाम है। कुछ विद्वानों का यह मत है कि

द्विवेदी जी की सर्जनात्मक साहित्य में जितनी प्रतिभा निखरी है उतनी आलोचना के क्षेत्र में नहीं । किंतु दोनों में अन्तर करने वाले समर्थक यह भूल जाते हैं कि सर्जनात्मक साहित्यकार ही आलोचक के पद पर बैठकर रचना के प्रति अधिक सहानुभूति शील और अंतरंग दृष्टिकोण अपना सकता है। उनकी आलोचना में सर्जनात्मक का सौन्दर्य स्पष्ट दिखाई देता है। श्री यशपाल महाजन के अनुसार "वे साहित्य के सौन्दर्य के आस्वाद और मूल्यांकन में साहित्यिक मानदंडों के उपयोग पर बल देते थे। किन्तु साथ ही साहित्य का संबंध यथार्थ जगत से मानते थे।

द्विवेदी जी ने साहित्य की प्रवृतियों और व्यक्तियों को देशकाल व्यापी सांस्कृतिक सन्दर्भ में रखकर देखने व समझने का आग्रह किया । उन्होंने पूर्ववर्ती आलोचकों द्वारा उपयोग में लाई जाने

वाली हिन्दी साहित्य की अध्ययन दृष्टियों का विरोध किया तथा उन्हें अव्यावहारिक तथा अनुपयुक्त बताया। 'सूर-साहित्य' उनकी प्रांरभिक आलोचनात्मक कृति है जो आलोचनात्मक उतनी नहीं है कि भावनात्मक। द्विवेदी जी ने समसामयिकता, आधुनिकता

और परम्परा को कुछ इस तरह समन्वित कर दिया है कि उनमें बहुत स्पष्ट भेद देख पाना कठिन है। उनकी कबीर संबंधी समीक्षा इसका सटीक उदाहरण है। श्री रामचन्द्र

तिवारी के अनुसार -" वास्तविकता तो यह है कि द्विवेदी जी ठेठ

आलोचक से काफी बड़े हैं। शुद्ध शोधकर्ता से विशिष्ट और अलग हैं। शास्त्रनिष्ठ आचार्य से अधिक महिमामय हैं। उनका एक विशिष्ट साहित्यिक व्यक्तित्व है। चिन्मुखी मानवता की खोज ही उनकी साहित्य यात्रा का लक्ष्य है। ....द्विवेदी जी नितांत सीमित और पारिभाषिक अर्थ में चाहे आलोचक न हों किन्तु उनकी कृतियों को निकाल देने पर हिन्दी आलोचना का वृत काफी कुछ छोटा हो जाएगा।"" आचार्य द्विवेदी जी ने

सैद्धान्तिक और व्यवहारिक दोनों ही आलोचनाएँ लिखी।

(क) *सैद्धान्तिक आलोचना* :-

उपन्यास, 'कविता' और 'कहानी', 'साहित्य', 'साहित्यकार' , 'साहित्यिक समालोचना' . 'निबन्ध' , 'नाटक' 'रस क्या है', 'कथा' , 'आख्यानिका और उपन्यास' आदि शीर्षक निबन्धों से आचार्य ने काव्यशास्त्र पर आधारित सैद्धान्तिक आलोचना की

है। इस आलोचना में काव्यांगों का स्वरूप-निर्णय व उनके इतिहास पर विशद व्याख्या की गई है। अपनी इन आलोचनाओं में आचार्य द्विवेदी जी ने काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का विश्लेषण करते हुए वैज्ञानिक प्रतिमान स्थापित किये हैं। उन्हीं के आधार पर आचार्य द्विवेदी जी ने साहित्य की आलोचना की है। आचार्य के लिए साहित्य का पहला उद्देश्य रहा है कि वह सामाजिक-मानव के हितार्थ हो। आचार्य द्विवेदी जी के लिए तो

साहित्य का लक्ष्य मनुष्य ही है। उनके अनुसार जो साहित्य मनुष्य को अंधकार से प्रकाश की ओर न ले जाए उसे साहित्य कहना ही गलत होगा।

(ख) *व्यावहारिक आलोचना* :-

'सू रसाहित्य' (1936) 'कबीर' (1942), 'मृत्युजंय रवीन्द्र' (1963), और · कालिदास की लालित्य योजना' (1965) नामक व्यावहारिक आलोचना के गन्थ प्रकाशित हुए। ये व्यावहारिक- आलोचना के प्रतिमान के रूप में स्थापित हुए। अपने साहित्यिक निष्कर्षों, अवधारणाओं को प्रतिमानों के रूप में स्थापित कर द्विवेदी जी ने 'सूर' और 'कबीर' को मानों पुनर्जीवित कर दिया, ये आलोचनात्मक-ग्रंथ मानो सर्जनात्मक कृतियाँ हो गयी। यह आचार्य द्विवेदी जी की मेधा ही थी जिसने इतिहास के पन्नों में विलुप्त होते कवियों को नई पीढ़ी के लिए अध्ययन और उत्सुकता का विषय ही नहीं

अपितु सामयिक भी बना दिया। 'कालिदास की लालित्य-योजना' में उन्होंने लालित्य और सौन्दर्य तथा 'भावानुप्रवेश' तथा 'यथालिखितानुप्रवेश' के आधार पर कालिदास के रचना संसार के नये आयामों के दर्शन कराये हैं। वस्तुतः द्विवेदी जी की आलोचना के क्षेत्र में उपादेयता अतुलनीय और स्मरणीय है। द्विवेदी जी ने आलोचना में मनुष्य की श्रेष्ठता और मानवाभिमुखता को ही अधिमान दिया । उनके अनुसार 'संस्कारजन्य क्षुद्र सीमाओं में बंधकर साहित्य ऊँचा नहीं उठ सकता। अपेक्षित ऊँचाई प्राप्त करने के लिए उसे मनुष्य की विराट एकता और जिजिविषा को आयत करना होगा। द्विवेदी जी ने चाहे काल विशेष के सम्बंध में लिखा हो, चाहे कवि

विशेष के सम्बंध में परन्तु उन्होंने अपनी आलोचनाओं में यह बराबर ध्यान रखा है कि आलोचना युग या कवि ने किन-किन श्रेयस्कर मानवीय मूल्यों की सृष्टि की है। कोई चाहे तो उन्हें मूल्यांवेषी आलोचक कह सकता है पर वे आप्त मूल्यों की अडिगता में विश्वास नहीं करते। उनकी दृष्टि में मूल्य बराबर विकसनशील होता है, उसमें पूर्ववर्ती और पार्ववर्ती चिंतन का मिश्रण होता है। द्विवेदी जी की आलोचना-विधा सम्बंधी

विशेषताओं को डॉ प्रभाकर माचवे ने सार रूप से इस प्रकार प्रस्तुत किया है:

1. मौलिक उभावना आदिकाल या कबीर या हिन्दी साहित्य का इतिहास को पढ़ते समय यह बात बार-बार सामने आती है कि उन्होंने सांस्कृतिक दार्शनिक इतिहास के सन्दर्भ में कितनी नयी बातें हमें दी।

2. साहित्य की सामाजिक जड़ों का विश्लेषण। अब तक आलोचना केवल रचनाकार की जाति देखती थी कि कबीर की दृष्टि ऐसी विद्रोही क्यों बनी ? क्यों हमारे नाथपंथी ऐसी अटपटी बानी का प्रयोग करते थे ? आचार्य द्विवेदी जी ने उनके समाज-शास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक कारणों को उजागर किया। 3. भाषा के स्तर पर प्राचीन और मध्ययुगीन साहित्य का अध्ययन । बौद्धों की पाली, जैनों की अर्ध-मागधी और संतों की उलटबानियों की संध्या-भाषा के परिप्रेक्ष्य में हजारी प्रसाद जी ने हमें यह देन दी ।

4. संप्रदायों से ऊपर उठकर साहित्य की मानवीय प्रतिबद्धता और उसी दृष्टि से रवीन्द्रनाथ, कालिदास, सूरदास, तुलसीदास, कबीर आदि की रचनाओं की पुनर्नवीकृत व्याख्या, मूल्यों का मूल्यांतरीकरण।

5. सबसे बड़ी उनकी देन यह थी कि साहित्य के अध्ययन को उन्होंने रूक्षता और क्लिष्टता के पिंजरे से उबार कर, उसे लालित्य से सम्पन्न किया, सहजता से उत्प्रेरित किया। आधुनिक जीवन की विषमता और विरोधी स्थितियों का आचार्य द्विवेदी

जी के जीवन में भी बाहुल्य था। परन्तु उनकी महान् मनुष्य के प्रति गहन आस्था और सुलझी दृष्टि के परिणाम स्वरूप उनकी रचनाओं में टूटन नहीं, अधोमुखी दर्शन नहीं, हेय मानसिकता नहीं . निराशा का स्वर नहीं है बल्कि मनुष्य जीवन के लिए वे रचनाएँ लौ के समान हैं, जो प्रकाश देती हैं. जीवन दर्शन है, जो उर्ध्वमुखी हैं, उदात्त-मानसिकता है और सर्जन के नये स्वर हैं।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

(1)आलोचक का दायित्व- डॉ० रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण , 1981

(2)आलोचक और आलोचना, डॉ0 बच्चन सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउर, नयी दिल्ली, 1984

(3)आधुनिक हिन्दी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव, रामचन्द्र प्रसाद, लोक भारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1 (1973)

(4) आठवें दशक की हिन्दी आलोचना, संपादक, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, प्रकाशक - नेशनल पब्लिशिंग हाउस (1991)

(5) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- 1,2 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना(1981)

(6) चिन्तामपि भाग- I, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, इंण्डियन प्रेस , प्रयाग (1966)

(7) दूसरी परम्परा की खोज, डॉ0 नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1983)

(8) पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, डॉ0 शान्तिस्वरूप गुप्त, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-6 (1979)

(9) शैली-विज्ञान - डॉ0 नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली (1980)

(10) हिन्दी आलोचना के आधार-स्तंभ, प्रोफेसर रामेश्वर लाल खण्डेलवाल (संपादक) राधा-कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-7 (1966)